

समकालीन हिंदी उपन्यास की आदिवासी नारी: तुलनात्मक अध्ययन

मेघना. एम. के

शोधार्थी

हिंदी विभाग

सरकारी ब्रेन्नेन कॉलेज,

धर्मडम्, तलशेशेरि

ई मेल: meghanamk2014@gmail.com

समकालीन हिंदी उपन्यास का स्वरूप स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक आदि विभिन्न विमर्शों पर केंद्रित है। विमर्श वर्ग चेतना के अवबोध का परिणाम है। आज के जमाने में प्रत्येक वर्ग अपने अस्तित्व के प्रति सचेत है। अस्तित्व अथवा पहचान बनाये रखना ही इन विमर्शों का प्रथम उद्देश्य है। विमर्श केंद्रित साहित्य के द्वारा प्रत्येक वर्ग की हर एक समस्या को संबोधित करने का हरसंभव प्रयास किया जा रहा है। उनका सकारात्मक उन्नयन ही साहित्य का परम लक्ष्य है। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में स्त्री एवं दलित विमर्श के बाद आदिवासी विमर्श का पदार्पण हुआ है। सन् 1950 ई. के बाद आदिवासी उपन्यास लेखन की अखंड परंपरा का प्रारंभ होता है। अब तक आदिवासी जीवन पर आधारित सैकड़ों उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। श्रीप्रकाश मिश्र का 'जहाँ बोंस फूलते हैं' (1956), संजीव का 'सावधान नीचे आग है' (1986), 'धार' (1990), 'पाँव तले की दूब' (1995), और 'जंगल जहाँ शुरू होता है' (2000), वीरेंद्र जैन का 'दूब' (1991) और 'पार' (1994), मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी' (1991), मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' (2000), राकेश कुमार सिंह का 'पठार पर कोहरा' (2003) और 'जो इतिहास में नहीं है' (2005), अमिता शर्मा का 'विस्थापित' (2005), सुभाष पंत का 'पहाड़ चोर' (2005), विनोद कुमार का 'समर शेष है' (2005) और 'रेड ज़ोन' (2015), रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' (2009) और 'गायब होता देश' (2014), सतीश दुबे का 'डेरा बस्ती का सफरनामा' (2010), कुणाल सिंह का 'आदिग्राम उपाख्यान' (2010), शैलेय का 'हलफनामा' (2012), महुआ माजी का 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' (2012), ब्रह्मवीर सिंह का 'दंड का अरण्य' (2012) आदि उल्लेखनीय हैं।

समकालीनता अपने समय का बोध कराती है। साहित्य में समकालीनता समसामयिक इतिहास को रेखांकित करने की भूमिका निभाती है। परिवर्तनशील सामाजिक यथार्थ को साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए समकालीनता एक अनिवार्य शर्त है। भारत के मूल निवासियों की सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन के शुभ-अशुभ पक्षों का ब्योरा देने का रचनात्मक प्रयास लेखकों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से किया है। "आदिवासी साहित्य आदिवासी जीवन की वास्तविकता का साहित्य है। आदिवासी साहित्य में प्रकृति पूजक, सामाजिक न्याय, प्रतिरोध का सामाजिक न्याय, प्रतिरोध की संस्कृति और जीवन संघर्ष के साथ-साथ उनकी विशिष्ट संस्कृति देखने को मिलती है। लेकिन आज आदिवासी जागरूक हो रहे हैं तथा नए-नए विचारों से प्रेरित हो रहे हैं। इसके परिणाम स्वरूप वे अपने इतिहास को तलाश रहे हैं। अपने ऊपर हुए अन्याय के खिलाफ न्याय के लिए अपने होने का अर्थ, अपने हक, अपने अस्तित्व, उनके साथ हुए भेदभाव को समझ रहे हैं और साहित्य में उसे अभिव्यक्त भी कर रहे हैं।" ¹ आज के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन के बदलते परिप्रेक्ष्य को उद्घाटित करते हुए नज़र आता है। उनके सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा का इतिहास तथा उसकी वर्तमान संरचना इन उपन्यासों में देख सकते हैं। समाज, सत्ता और पूँजीपति वर्ग द्वारा आदिवासी जीवन में हस्तक्षेप, उसका दूरगामी प्रभाव और परिणाम तथा उसके विरुद्ध संघर्ष भी इन उपन्यासों की विषयवस्तु हैं। यथार्थ की ऊष्मा इनकी लोकप्रियता बढ़ा रही है। अतः आदिवासी उपन्यास समकालीन हिंदी उपन्यास का विशिष्ट अंग बन गया है। ऊपर से देखें तो जातीय असमानता, बेरोज़गारी, गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, प्रदूषण, बीमारियाँ आदि आदिवासी जीवन की प्रमुख चुनौतियाँ हैं। लेकिन आदिवासी स्त्री समाज की स्थिति कुछ अलग है। उन्हें उपरोक्त समस्याओं के साथ-साथ अपने सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था की पुरुष सत्तात्मक मानसिकता से उत्पन्न स्त्री-विरोधी चेतना एवं बाहरी समाज के हस्तक्षेप से उपजी मुद्दों का भी सामना करना पड़ता है। समाज के हर तबके की स्त्री का उत्पीड़न होता है। तथाकथित शिक्षित-सभ्य समाज में भी स्त्री का आदर-सम्मान नहीं किया जाता है। अपने परिवारिक जीवन से लेकर सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में उसे असमानता और अत्याचार से टक्कर लेना पड़ता है।

हिंदी उपन्यासों में आदिवासी महिलाओं की ज़िंदगी के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित किया गया है। आधुनिकता के इस दौर में भी आदिवासी समाज अंधविश्वास और रूढ़िवादिता से ग्रस्त है। इसका मुख्य कारण शैक्षिक पिछड़ापन है। अलग-अलग आदिवासी समुदायों में विभिन्न प्रकार के रीति-रिवाज़ और चलन हैं। अधिकांश आदिवासी उपन्यासों में उनकी धार्मिक रूढ़ियों जैसे डायन प्रथा, तंत्र-मंत्र, टोना-टोटका, ओझाई- का उल्लेख मिलता है। 'धार', 'समर शेष है', 'पठार पर कोहरा' और 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में डायन प्रथा की समस्या का जिक्र किया गया है। इसमें महिलाओं पर किसी मृत बच्चे को ज़िंदा करने का दबाव डाला जाता है। असफल होने पर उसके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है और पुरुष समाज उस पर यौन अधिकार स्थापित कर लेता है। धार्मिक कट्टरता और रूढ़ियों के नाम पर बेकसूर औरतों की ज़िंदगी बरबाद कर दी जाती है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में अपशगुनी घोषित की जानेवाली लड़कियों की शादी पहले किसी कुत्ते से कर दी जाती है ताकि उसका दोष निकल जाए। तब तक उससे कोई शादी नहीं करता है। स्पष्ट है कि आदिवासी समाज में भी स्त्री को दोगुना दर्जे की मान्यता ही प्राप्त होती है।

आदिवासी महिलाओं का सबसे ज्यादा शोषण बाहरी समाज द्वारा किया जाता है। अंग्रेज़ी उपनिवेश के दौर से लेकर आज तक यह शोषण परंपरा समाप्त नहीं हुई है। हर एक आदिवासी उपन्यास में अफसरों, अधिकारियों, महाजनों और जमींदारों द्वारा नारी के यौन शोषण का उल्लेख मिलता है। जिससे स्पष्ट होता है कि नारी का सबसे ज्यादा शारीरिक उत्पीड़न ही होता है। मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी' में आदिवासी आदमी लोग ज़मींदार के शोषण और अत्याचार का विरोध करने की प्रतिक्रिया में उनकी स्त्रियों और लड़कियों को खराब कर दिया जाता है। राकेश कुमार सिंह कृत 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में अंग्रेज़ों के हुकुम के विपरीत जंगल में घुसकर बंदर पकड़ी लड़की को जुर्माना अपनी देह से चुकानी पड़ती है। उस ज़माने में अधिकारी और ज़मींदार नलड़कियों को कैद कर रखल बनाते थे। विरोध करनेवालों की हत्या की जाती थी। 'पार', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'ग्लोबल गाँव के देवता' आदि उपन्यासों में आदिवासी बच्चियों और स्त्रियों की बिक्री का भयानक यथार्थ चित्रण हुआ है। चौकानेवाली बात यह है कि इस तरह भोली भाली लड़कियों को फुसलाकर चुरानेवाले उसी गाँव के बड़े-बड़े लोग हैं। हमारे देश का दुर्भाग्य है कि कुछ लोग खुद धर्म के ठेकेदार बनकर समाज का शोषण करते हैं। 'पठार पर कोहरा' में जब रेंगनी औघड़ बाबा- जिसके लिए पंचायत ने गाँव के प्रत्येक घर से भोजन की व्यवस्था करने का फैसला लिया था- के पास जाती है तो नशीला पेड़ा देकर उसे अपने हवस का शिकार बनाता है। इससे पहले रेलवे पुलिस के सिपाहियों द्वारा उसका सामूहिक बलात्कार हुआ था। अतः वह अपने बेटे के पिता का नाम नहीं बता पायी। इसीलिए पंचायत ने उसे गाँव के दूसरे घरों से दूर घर बनाने का हुकुम दिया। गलती भी उसकी और दंड भी उसीको जो शिकार बन गई हो। इसी प्रकार 'ग्लोबल गाँव के देवता' में इस सच्चाई को नंगे रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें जगत्ेश्वरनाथ (शिवदास बाबा) के आश्रम के आवासीय विद्यालय के यथार्थ को व्यक्त करते हुए डॉ. रामकुमार कहते हैं "जब से आवासीय स्कूल का चक्कर चल निकला था, तो उनकी विकृतियों को पंख लग गए थे। अब रोज़ रात में पैर-वैर दबाने के लिए कमसिन लड़कियाँ चाहिए थीं।...सब उसके रसूख से डरते हैं। आश्रम में जहाँ-तहाँ के क्रिमिनल दाढ़ी-वाढ़ी बढ़ाकर धूनी-गाँजा रमाये पड़े रहते थे। उनसे डरते। थाना पुलिस प्रशासन पर उनकी पकड़ से डरते।"² अफसोस की बात यह है कि स्वतंत्रता के 75 साल बाद भी औरत को गुलामी से मुक्ति नहीं मिली है। आज भी वह भोग्य वस्तु ही समझी जाती है। यही कारण है कि आज भी हम आदिवासी लड़कियों के बलात्कार का समाचार सुनते हैं।

आदिवासियों का आर्थिक शोषण सबसे ज्यादा होता है। उनका जीवन जंगली या प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। सरकार द्वारा परमाणु संपन्न, खनन उद्योग, अभयारण्य, विशेष आर्थिक क्षेत्र, बाँध जैसे विकास परियोजनाओं के लिए जंगली भूमि अधिग्रहीत कर पूंजीपतियों को दी जाती है और वे आदिवासियों से उन्हीं की ज़मीन पर मजदूरी करवाते हैं। यही कारण है कि गरीबी के चक्कर से उन्हें कभी मुक्ति नहीं मिलती है। 'धार', 'सावधान नीचे आग है', 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' जैसे उपन्यासों में इस बात का उल्लेख किया गया है। शोषण नीति से ऊबकर अधिकांश आदिवासी लोग नक्सलबारी में शामिल हो जाते हैं और सत्ता एवं समाज से संघर्ष करने लगते हैं। इन्हें समाप्त करने के उद्देश्य से पुलिस को भेजा जाता है। तब भी नुकसान औरत का ही होता है। एक ओर उसे अपने पति या बेटे या कोई रिश्तेदार आदमी की मौत की खबर मिलती है। दूसरी ओर पुलिस नक्सलियों को पकड़ न पाने के क्रोध में या उनमें भय पैदा करने के उद्देश्य से औरतों का यौन शोषण करते हैं। 'धार' की नायिका मैना के साथ जेल में जेलर जबरदस्ती करता है और वह गर्भवती हो जाती है। 'जहाँ खिले हैं रक्त पलाश' में गोनवा अपनी बेटि के साथ हुए बलात्कार की शिकायत करने थाने जाता है तो उसका अपमान किया जाता है। "एक दफे सील टूट जाए तो कहीं पता चलता है कि बोतल में से किसने घूँट पिये?"³ इसप्रकार विभिन्न कथा संदर्भों के माध्यम से 'धार', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'जहाँ खिले हैं रक्त पलाश', 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'रेड़ ज़ोन' जैसे उपन्यासों में पुलिस प्रशासन की चरित्रहीनता और अमानवीयता का पर्दाफाश किया गया है।

समकालीन आदिवासी उपन्यासों द्वारा सबसे ज्यादा संबोधित की गई समस्या विकास और विस्थापन की है। ज्यादातर उपन्यासों की कथावस्तु इसीके इर्द-गिर्द रची गई है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में यूरेनियम खदानों के विकिरणों से पूरा आदिवासी समाज लाइलाज बीमारियों से ग्रस्त होता है। विकिरण प्रदूषण के प्रभाव से स्त्रियाँ बाँझ हो जाती हैं। अनपढ़ आदिवासी समाज इसे स्त्रियों की प्राकृतिक कमी समझकर उन्हें घर से निकाल देता है। "डॉक्टरों के टीम के साथ घूमते हुए आदित्यश्री ने ऐसी ठेर सारी महिलाओं की पीड़ा को अपनी फिल्म में उतारा जिन्हें या तो बांझपन की शिकायत थी या फिर जन्म लेने से पहले या बाद में जिनके बच्चे मर जाते थे। जिन्हें बार-बार गर्भपात होता, उनसे भी ज्यादा वे औरतें दुखी दिखती जिनके बच्चे जन्म लेने के चौबीस घंटे, तीन दिन या सात दिन ज़िंदा रहने के बाद मर जाया करते थे। शारीरिक विकृतियों के साथ जन्मे बच्चों के माताओं का दर्द तो उनसे भी ज्यादा चुभा कैमरे के साथ-साथ फिल्मकार की आँखों में।"⁴ अतः हम कह सकते हैं कि बहिरागत शोषकों द्वारा इनकी अज्ञानता और अशिक्षा का फायदा उठाया जाता है और आदिवासी जीवन भर उससे अनभिज्ञ रहते हैं।

जब भी विकास परियोजना का आयोजन किया जाता है आदिवासी के लिए वह विस्थापन की परियोजना बन जाती है। कोई भी उन्हें विकास का हकदार नहीं समझता है। भूमि हड़पने पर आदिवासी का पुनर्वास कराने या उन्हें मुआवजा देने का बंदोबस्त किया जाता है। लेकिन सबकुछ अधिकारियों और राजनीतिज्ञों के जेब में चला जाता है। बाहरी दुनिया आदिवासी के लिए विशेषकर औरतों के लिए नरक के समान है। अशिक्षा, आर्थिक विषमता और असुरक्षा के बोध से उनका जीवन तहस-नहस हो जाता है। बच्चा पालना तथा परिवार संभालने में महिलाओं की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। उसके लिए स्वाभाविक परिवेश और संसाधनों का अभाव उसे मानसिक रूप से कमजोर कर देता है। शोषण सबका होता है। लेकिन उसे समझने और उसके विरुद्ध संघर्ष करने का धैर्य सबमें नहीं होता है। समकालीन आदिवासी उपन्यासों में अपने अधिकारों के प्रति सचेत, संघर्षशील नारी का चित्र भी पाया जाता है। 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा, 'धार' की मैना आदि ऐसे नारी पात्र हैं जिनमें अदम्य जिजीविषा और संघर्ष चेतना मुखरित है। इन्हें भी कई प्रताड़नाएं झेलनी पड़ती है फिर भी ये पीछे नहीं हटतीं। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और अत्याचार व असमानता का विरोध करनेवाली नारी चरित्रों के ज़रिए आदिवासी उपन्यासों में स्त्री विमर्श भी स्वतः संलग्न होता नज़र आता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आदिवासी महिलाओं की समस्याएं मुख्यतः दो स्तर के होते हैं। पहला अपना पितृसत्तात्मक समाज द्वारा निर्धारित जीवन शैली, रीति-रिवाज़ और प्रथाओं के कारण उत्पन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक समस्याएं और दूसरा बाहरी समाज से आगत शोषकों के कारण उत्पन्न समस्याएं। उपर्युक्त विश्लेषण से पता चलता है कि आदिवासी महिलाओं की सबसे बड़ी चुनौती यौन शोषण ही है। अतः हम कह सकते हैं कि आदिवासी पुरुष की तुलना में आदिवासी महिला का जीवन अधिक संकीर्ण और संघर्षपूर्ण है। राजनीति, पुलिस, प्रशासन और कानून सब एकजुट होकर आदिवासी के अस्तित्व मिटाने का षड़यंत्र चला रहे हैं। आदिवासी एक ऐसा समाज है जो सदियों से हाशिए के बाहर रह रहे हैं। देश के इस मूल मानव जाति का उत्थान ही आदिवासी विमर्श पर आधारित उपन्यासों का परम लक्ष्य है।

संदर्भ

1. ग्लोबल गाँव के देवता और किस्सागो में चित्रित आदिवासी समाज, प्रेम प्रकाश, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2018, पृ. सं. 19-20
2. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेंद्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, चौथा संस्करण 2017, पृ. सं. 65
3. जहाँ खिले हैं रक्त पलाश, राकेश कुमार सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2003 पृ. सं. 144
4. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, महुआ माजी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2016, पृ. सं. 182